आत्मा ही जिन है, सही सिद्धान्त का सार है

जो जिणु सो अप्पा मुणहु इह सिद्धंतहु सारु।
इह जाणिविणा जोयईहु छंडहु मायाचारु॥ २१॥

जिनवर सो आतम लखो, यह सैद्धान्तिक सार।
जानि इह विधि योगिजन, तज दो मायाचार॥

अन्वयार्थ – **(जो जिणु सो अप्पा मुणहु)** जो जिनेन्द्र है वही यह आत्मा है ऐसा मनन करो **(इह सिद्धंतहु सारू)** यह सिद्धान्त का सार है। **(इह जाणेविण)** ऐसा जानकर **(जोयईहु)** हे योगीजनों! **(मायाचारु छंडहु)** मायाचार छोड़ो।

वीर संवत २४९२, ज्येष्ठ कृष्ण १२, बुधवार, दिनाङ्क १५-०६-१९६६
गाथा २१ से २३ प्रवचन नं. ९

२१... आत्मा ही जिन है, सही सिद्धान्त का सार है। देखो, इस गाथा में, चारों ही अनुयोगों का सार क्या है? वह यह बतलाते हैं। सर्व सिद्धान्त का सार.... सर्वज्ञ के मुख में से जो दिव्यध्वनि (निकली); सर्वज्ञ वीतराग होने के बाद दिव्यध्वनि निकली, उस दिव्यध्वनि का सार क्या है? वह इसमें कहा जाता है।

जो जिणु सो अप्पा मुणहु इह सिद्धंतहु सारु।
इह जाणिविणा जोयईहु छंडहु मायाचारु॥ २१॥

जो जिनेन्द्र है, वही यह आत्मा है – ऐसा मनन करो। भगवान की वाणी में ऐसा आया, चारों अनुयोगों में – प्रथमानुयोग में भी यह आया। भले ही कथानुयोग में इस आत्मा को शुद्ध आत्मा का साधन करते हुए, उसे रागादि कितने रहे और कहाँ स्वर्ग में

गया ? – उसकी बातें वहाँ हैं। प्रथमानुयोग में भी आत्मा के शुद्धस्वरूप को (बताते हैं) क्योंकि जिनेन्द्रदेव ने ध्वनि द्वारा कहा, वह तो वीतरागपना करने का उन्होंने कहा। स्वयं सर्वज्ञ और वीतराग होकर वाणी आयी तो उस वाणी में – हम जो हैं, इतना तू है, वह हम हैं, स्वरूप से, हाँ! परमेश्वर के स्वरूप में और आत्मा के स्वरूप में कहीं अन्तर नहीं है। वस्तु भले भिन्न है परन्तु भाव में कोई अन्तर नहीं है।

मुमुक्षु – पुराण में भी ऐसा लिखा है।

उत्तर – पुराण में यह लिखा है। पुराण में लिखने का सिद्धान्त का सार यहाँ क्या कहा ? **इह सिद्धंतहु सारु** पुराण में कहा हो तो भी जो आत्माएँ अपने स्वरूप को वीतराग ज्ञाता-दृष्टास्वरूप जानकर, भेद का लक्ष्य छोड़कर, अभेद चैतन्य का साधन किया, उनकी कथाओं के वर्णन को पुराण कहते हैं। तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेवों का उसमें वर्णन है परन्तु उस पुरुष ने वर्णन में किया क्या ? कहा क्या ? और किसलिए कहा ? इन सब वर्णन में यह आत्माएँ – शलाका पुरुष, तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव इत्यादि – इन्होंने मूल आत्मा के अन्तरस्वरूप का (साधन किया) वीतराग जैसा ही मैं आत्मा हूँ.... समझ में आया ? उन्हें मोक्ष प्रगट हो गया; मुझे मोक्ष, स्वभाव में विद्यमान है – ऐसे आत्मतत्त्व को वीतराग परमात्मा जैसा अपने को जानना ही अनुयोग में – प्रथमानुयोग में कहने का सार है। कहो, समझ में आया ?

दूसरा करणानुयोग। करणानुयोग में भी यह सार है कि देखो भई! कर्म निमित्त है, उनके निमित्त से विकार होता है, उसकी अवस्थाएँ अनेक प्रकार की होती है परन्तु यह कर्म और यह कहते हैं, उसका सार यह है कि इससे रहित आत्मा है। समझ में आया ? करणानुयोग में कहने का आशय तो यह है कि कर्म एक चीज है, उसके लक्ष्य से जीव की अवस्थाएँ अनेक होती हैं और उसके परिणाम कैसे होते हैं, उन्हें बतलाते हैं परन्तु वे सब विकारी परिणाम और कर्म, यह व्यवहार वस्तु है। यह बतलाने का आशय तो तू उनसे रहित है ऐसा बतलाना है।

मुमुक्षु – कर्म से दुःखी हुआ – ऐसा नहीं बतलाना ?

उत्तर – ऐसा नहीं बतलाना है। उनसे सहित है – ऐसा नहीं बतलाना है। रहित

है तो रहित हो, इसलिए बतलाना है। समझ में आया? कर्म का विकार का सहितपना बतलाने का हेतु यह है कि वस्तु को वर्तमान पर्याय से सम्बन्ध है, वस्तु के स्वभाव में उसका सम्बन्ध नहीं है, यह बतलाने के लिये यह बात की है। समझ में आया? करणानुयोग में भी सार तो यह है कि ऐसे परिणाम ऐसे हों, शुभ-अशुभ, अशुद्ध... समझ में आया? उसमें निमित्त कौन होता है? एक में – शुद्ध में निमित्त का अभाव होता है, यह बतलाकर बताना है तो आत्मा वीतराग परमात्मा के समान है। परमात्मा द्वारा कथित तत्त्व परमात्मा होने के लिये ही कथन होता है। सर्वज्ञ और वीतराग होकर फिर कथन आया, उसका अर्थ क्या हुआ? कि तू सर्वज्ञ और वीतराग हो, इसके लिए कथन आया है। आहा...हा...! अतः चारों अनुयोगों में यह कथन उसके सार में आता है। कहो!

भगवान आत्मा परमात्मा के समान है, भाई! हमने सहित कहा है, वह रहित बताने के लिये (कहा है)। उसका सहितपना वस्तु में नहीं है, यह बतलाने के लिये सहितपना बतलाया है। समझ में आया? तात्पर्य तो वीतरागता है या नहीं? तो वीतरागता कब आती है? ज्ञानावरणीय में ज्ञान को रोका – ऐसा बतलाया, अर्थात्? कि भाई! तू जब ज्ञान की अवस्था हीन करता है, तब ज्ञानावरणीय निमित्त है। यह बतलाने का हेतु – उस हीनता की दशा और निमित्तपने का आश्रय छोड़। रखने के लिये कहा है? वीतरागता बतलाने के लिये कहा है या परमात्मा होने के लिये कहा है? या वहाँ रुकने के लिये कहा है? पूजा करने के लिये कहा है?

मुमुक्षु – अन्तराय कर्म की पूजा, ज्ञानावरणीय कर्म की पूजा.....

उत्तर – अनतराय की पूजा भी क्या? अल्पज्ञ परिणमन के आदर के लिये नहीं कहा। अल्पज्ञ दशा तेरी तुझसे होती है, अल्प दर्शन होता है, अल्प वीर्य होता है, यह बताकर पूर्णानन्द अखण्ड परमात्मा के समान आत्मा है, और मैं परमात्मा हुआ तो तू हो सके ऐसा है। यह बतलाने के लिये करणानुयोग में कथन है। क्या कहते हैं? देखो न!

जो जिणु सो अप्पा मुणहु जो मोक्षतत्त्व प्राप्त भगवान हैं – ऐसा आत्मा को जान। लो! कोई कहे, हमें मोक्ष का क्या काम है? समझ में आया? सर्वज्ञ भगवान सर्वज्ञ की जाने, हमें क्या काम है? आहा...हा...! इसका अर्थ क्या है? सर्वज्ञ परमात्मा एक समय

में त्रिकाल ज्ञान – ऐसा बतलानेवाले भगवान भी कहते हैं कि तू त्रिकाली ज्ञान ही है। तीन काल तीन लोक को जाननेवाला ही तू वर्तमान है। राग का कर्ता या सम्बन्ध में लक्ष्य जाये, वह कहीं वास्तविक स्वरूप नहीं है – यह बतलाने को सर्वज्ञपद, जिनपद और मोक्षपद बतलाया है। समझ में आया? पहले विवाद पूरा... सर्वज्ञ है या नहीं? सर्वज्ञ का सर्वज्ञ जाने। अरे... भगवान!

यहाँ तो कहते हैं, 'जिन सो हि है आत्मा' – इन सर्वज्ञ ने जो बतलाया – ऐसा ही यह आत्मा है। स्वयं को जानना ही नहीं चाहता, उसकी दरकार ही नहीं है। इस बात में ऐसे शल्य होते हैं, सूक्ष्म शल्य ऐसे रहे होते हैं। यह तो बहुत स्थूल है परन्तु अनन्त काल में नौवें ग्रैवेयक गया, ऐसा शुभ शल्य अन्दर मिठास का रह गया है कि उसका पता इसके हाथ में नहीं आया। समझ में आया? कहीं-कहीं अधिकपने राग को, विकल्प को, पुण्य को, निमित्त को, स्वभाव में से अनादर करके कहीं-कहीं अधिकपना माना-मनवाया – ऐसी दृष्टि में रुका परन्तु जिन, वह आत्मा – ऐसा इसने नहीं जाना है। समझ में आया? देखो न! सार-सार बात भरी है।

जो जिनेन्द्र है, वही यह आत्मा है.... वही यह आत्मा है.... ऐसा, ऐसा। **ऐसा मनन करो।** ऐसा मनन करो। करणानुयोग में भी यही कहा है और चरणानुयोग में भी यह कहा है कि श्रावक के, मुनि के व्रत कैसे होते हैं? कहाँ? कि जहाँ शुद्धात्मा जिन-समान है – ऐसा जाना है, उसकी शुद्धता प्रगट हो गयी है, उस भूमिका के प्रमाण में राग के आचरण का भाव कैसा होता है? यह वहाँ बतलाया है। अकेले राग के आचरण के लिये राग बतलाया है? समझ में आया?

वीतराग परमानन्द प्रभु, राग और अल्पज्ञता का आदर छोड़कर – निमित्त, राग और अल्पज्ञता का आदर छोड़कर सर्वज्ञ परमात्मा, सर्वज्ञ हुए। इसी प्रकार (तुझे) सर्वज्ञ होना होवे तो हमारे जैसा तू कर, हमारे जैसा तू है – ऐसा पहले स्थापित कर। मैं वस्तु से पूर्ण परमात्मा वीतराग हूँ। अल्पज्ञता है, राग है, वह आदरणीय नहीं है। इस प्रकार चरणानुयोग में भी यह कहा है – ऐसा वर्तन श्रावक का, मुनि का व्यवहार से होता है। वह व्यवहार होता कहाँ है? कि निश्चय ऐसी शुद्धता हो वहाँ। कैसी शुद्धता? मैं वीतराग समान

परमात्मा हूँ, अकेला ज्ञाता-दृष्टा आत्मा परिपूर्ण हूँ – ऐसे भान की भूमिका में बाकी रहे हुए आचरण का राग कैसा होता है ? वह चरणानुयोग में बतलाया गया है। इसलिए उसमें सार तो आत्मा ही है। सार, यह राग की क्रिया सार नहीं है। भेद से बताया है तो अभेद; भेद सार नहीं है। व्यवहार से बतलाया है निश्चय; व्यवहार सार नहीं है। समझ में आया ? इस व्यवहार के आचरण से बतलाया कि वहाँ निश्चय कैसा होता है ? यह बतलाया है।

यहाँ तो स्पष्ट बात करते हैं, देखो ! **जो जिणु सो अप्पा** यहाँ तो वीतराग, वह आत्मा – ऐसा। किसी को ऐसा हो जाता है – हम दो आत्मा एक होंगे ? उसका अर्थ कि सर्वज्ञ परमात्मा कन्द शुद्ध चिदानन्द स्थित हैं। ऐसा ही तू कन्द शुद्ध ज्ञातादृष्टा का कन्द उसे आत्मा कहते हैं। **जो जिणु सो अप्पा** आत्मा अत्यन्त वीतरागता का पिण्ड ही है। परमात्मा पर्याय में वीतराग पिण्ड हो गये हैं, यह वस्तु से वीतराग पिण्ड ही है। इस जानने-देखने की क्रिया के अतिरिक्त इसकी कोई क्रिया है ही नहीं। ऐसा तू आत्मा को जिन-समान जान। द्रव्यानुयोग में तो यही चलता है। यह तो द्रव्यानुयोग की व्याख्या है। समझ में आया ?

तीन अनुयोग की बात हुई। द्रव्यानुयोग में तो आत्मा को शुद्ध बतलाना है, अभेद बतलाना है। भेद से बतलावे तो भी भेद बतलाना है ? व्यवहार से व्यवहार बताया है ? बताया है अभेद। यह वस्तु परमात्मा पूर्ण है। इसे विश्वास कहाँ है ? महा सत्स्वरूप भगवान चिदानन्द परमात्मा, अनन्त परमात्मा जिसके गर्भ में स्थित है, उसका प्रसव करने की ताकत इस आत्मा में है। राग को प्रगट करे, वह आत्मा नहीं, वह आत्मा में नहीं; अल्पज्ञता रहे वह आत्मा में नहीं है। ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! कहो, प्रवीणभाई ! ऐसी बातें सुनी नहीं।

मुमुक्षु – आपकी बात लक्ष्य में लेने के लिए कितनी योग्यता चाहिए ?

उत्तर – कितनी योग्यता (चाहिए), ठीक न ? ए...य... आहा...हा... ! क्या कहते हैं ? परन्तु सामने शब्द पड़ा है या नहीं ? सबके हाथ में पुस्तक है या नहीं ? नामा मिलाते हैं या नहीं ? बनिये मिलाते हैं न ? यह दीपावली आवे तब नहीं मिलाते ? यह दीपावली का

अवसर आया न, केवलज्ञान प्राप्त करने का अवसर है। आहा...हा... ! समझ में आया ? संसार का संक्षिप्त, संसार का संक्षिप्त, मोक्ष का विस्तार। आहा...हा... !

सिद्धान्त सार यह है। देखो न पाठ में तो कैसा शब्द रखा है ! चार अनुयोग के सिद्धान्त का सार इस संसार का अभाव और मोक्ष की उत्पत्ति है। ऐसा आत्मा परमात्मा समान हूँ, यह जाने बिना इसे स्वभाव का आश्रय नहीं होता और अल्पज्ञता तथा राग का आश्रय नहीं मिटता तो सर्वज्ञ और वीतराग नहीं होता। आहा...हा... ! यह (मात्र) बात नहीं, यह वस्तु है। समझ में आया ? भगवान आत्मा एक समय में जैसे परमेश्वर जिनेन्द्र तीन लोक के नाथ अनन्त गुण की समृद्धि से व्यक्तपने प्रगट है – ऐसे जो परमात्मा के झुण्ड सिद्धनगरी में विराजमान हैं... समझ में आया ? सिद्धनगर में अनन्त सिद्ध विराजमान हैं – ऐसा ही भगवान आत्मा.... समझ में आया ? इसके बाद कहेंगे या नहीं वह ? असंख्य प्रदेश.... कहाँ रहते हैं ? वह क्षेत्र लेंगे, फिर २३ में लेंगे। २३ में है, २४ में एक है, वह फिर क्षेत्र बतलाना है, इन्होंने। सब गुण कहाँ रहे हैं और इतना तू है यह बताना है। आहा...हा... !

भाई ! तू नजर को जरा बाहर से समेट। सर्वज्ञ परमात्मा हुए, उन्होंने बाहर से संकोच किया और अन्दर का विस्तार किया था। समझ में आया ? इतनी अनुभव की दृष्टि हुई कि मैं तो पूर्ण अभेद परमात्मा ही हूँ, मुझमें और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं है। इस प्रकार अन्तर नहीं है – ऐसा करनेवाले को अन्तर मिट जायेगा। समझ में आया ? आहा...हा... ! यह तो योगसार है। सन्त, दिगम्बर सन्तों का कोई भी शास्त्र लो, छोटी गाथा लो, बड़ी गाथा लो, कुछ (भी लो) परन्तु सन्तों की कथन शैली अलौकिक है। सनातन वीतराग परमेश्वर तीन लोक के नाथ ने जो धर्म कहा, उसे दिगम्बर सन्तों ने धारण करके ढिंढ़ोरा पीटा। धर्म धुरन्धर धर्मात्मा.... देखो। योगीन्द्रदेव पुकार.... पुकार... (करते हैं)। अरे ! आत्मा ! परमात्मा जैसा... जिन और तुझमें अन्तर डालता है ? भेद करता है ? भेद करेगा तो भेद कब छूटेगा ? समझ में आया ?

जो जिनेन्द्र है, वही यह आत्मा है - ऐसा मनन करो। मैं रागवाला, निमित्तवाला अल्पज्ञवाला – ऐसा मनन नहीं करो। आहा...हा... ! अरे... मैं अल्पज्ञ, अरे... ऐसी

ताकत.... वह मुझमें होगी ? यह रहने दे। समझ में आया ? मैं तो पूर्ण परमात्मा होने योग्य नहीं परन्तु मैं अभी परमात्मा हूँ। आहा...हा... ! मैं स्वयं द्रव्यस्वभाव से परमात्मा हूँ। यह वीतराग और (मैं) दोनों में मुझे अन्तर नहीं है – ऐसा मनन कर। **यही सिद्धान्त का सार है।** देखो चारों अनुयोग और लाखों कथनों का यह सार है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

इह सिद्धंतहु सारु ओ...हो...हो... ! अच्छे शब्दों के शास्त्र, वीतरागी समस्त वाणी के शास्त्र या दिव्यध्वनि, इन सबका सार तो यह है। परमात्मा समान जानना – इसका अर्थ कि निमित्त, राग और अल्पज्ञ तरफ की रुचि छोड़ दे और सर्वज्ञ – वीतरागस्वरूप मैं आत्मा-परमात्मा हूँ – ऐसी अन्तरदृष्टि कर। तू पर्याय में परमात्मा हुए बिना नहीं रहेगा। फिर तू नहीं रह सकेगा। यह है या नहीं ? ए...इ... !

विद्यमान को अविद्यमानता फिर नहीं रुचती अधिक पैसेवाले होते हैं न ? उस पुत्र का विवाह होता हो वहाँ चूं... चें... करता होगा ? और इकलौता लड़का हो, तथा पचास लाख की पूँजी हो तो (ऐसा बोलता है) ए... खर्च करो अभी पाँच लाख और लड़का कमाऊ हो, पैसे आते हैं, कन्या करोड़ रुपये लाती हो, कन्या लानेवाली हो... दस हजार नहीं। सुमनभाई तो दस हजार लाते हैं। वह कन्या तो करोड़ रुपये लेकर आती हो, पाँच करोड़ तो यहाँ हो और लड़का लाखों करोड़ों कमाता हो। लाओ, पानी... ओ...हो... ! और बीस वर्ष का युवा पुत्र हो... कहो ? इसमें वह कमी रखता होगा ? विद्यमान को अविद्यमान शोभता होगा ? इसी प्रकार भगवान पूर्ण परमात्मा जैसा विद्यमान है, उसे अल्पज्ञ और राग शोभता होगा ? समझ में आया ? क्या कहते हैं यह ? आहा...हा... !

जो जिणु सो अप्पा मुणहु मार धड़ाक पहले से, पामर है या तू प्रभु है ? तुझे क्या स्वीकार करना है ? पामरपना स्वीकार करने से पामरपना कभी नहीं जायेगा, प्रभुपना स्वीकार करने से पामरपना खड़ा नहीं रहेगा। समझ में आया ? आहा...हा... ! भगवान आत्मा... मैं स्वयं द्रव्य से परमेश्वरस्वरूप ही हूँ – ऐसा जहाँ परमेश्वरस्वरूप का विश्वास आया तो वीतराग जैसा हुए बिना नहीं रहेगा। दृष्टि में वीतराग हुआ, वह स्थिरता से होकर अल्प काल में केवलज्ञान लेगा – ऐसी यहाँ बात करते हैं। समझ में आया ? अरे... ! हम

कब होयेंगे ? अरे ! क्या होगा ? अब छोड़ न परन्तु लप.... कब क्या होगा क्या ? है। है, पूरा भगवान परमात्मा पूर्णानन्द जिनेश्वर जैसा आत्मा है, ऐसे सब भगवान हैं, हाँ ! सब भगवान हैं, उसे देख न ! राग और अल्पज्ञता वह कहीं आत्मा है ? अल्पज्ञता है, वह तो व्यवहार आत्मा हुआ.... रागादि तो परतत्त्व हुआ... कर्म आदि तो अजीवतत्त्व हुआ। जो आत्मा है, उसे तू देख न ! तो आत्मा है, वह तो अल्पज्ञ, राग और निमित्तरहित है। समझ में आया ? इन जिन (जिनेन्द्र) को जैसे अल्पज्ञता राग और निमित्त नहीं है, वैसे ही मुझे भी अल्पज्ञता, राग और निमित्त नहीं है। मैं सर्वज्ञ समान हूँ। आहा...हा... ! समझ में आया ?

इउ जाणेविण जोयइहु – ऐसा जानकर, हे धर्मी जीव ! **मायाचारु छंडहु।** क्या कहते हैं ? यह अल्प राग और यह राग करते हैं और अमुक करते हैं और अमुक करेंगे – ऐसा करते-करते होता है – ऐसी माया छोड़ दे। भगवान पूरा सीधा-सरल पड़ा है। समझ में आया ? राग करोगे तो ऐसा होगा, ऐसी पुण्य की क्रिया लोगों को बताई... आहा...हा... ! कठिन क्रिया ! क्या करना है तुझे ? राग करके बताना है कि मैं साधु हूँ ? यह करके बताना है तुझे या यह करके बताना है ? – ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? साधु की क्रिया और राग की क्रिया... देखो ! इसमें एकदम ऐसी निर्दोष की है, ऐसी की है, ऐसी की है। क्या है तुझे ? आहा...हा... ! मायाचार शब्द से.... चारित्रवन्त है न ? उन्हें तीन शल्य नहीं होते – माया, निदान, और मिथ्यात्व – तीन शल्य ही नहीं होते। भगवान को शल्य हो तो तुझे शल्य हो। सिद्ध भगवान को है ? तो जिन सो ही है आत्मा.... श्रीमद् ने नहीं कहा कुछ ? जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म। यह तो बनारसीदास ने लिखा है। इसी वचन से समझ ले जिन वचन का मर्म। जिन सो ही है आत्मा और अन्य सो ही है कर्म, इसी वचन से समझ ले, जिन प्रवचन का मर्म। लो ! फिर यह आ गया। देखो, इसके साथ मेल, हैं ? यह बनारसीदास में है। देखो, यहाँ यह कहा।

जिन सो हि है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म;
इसी वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म॥

आहा...हा... ! भगवान भी उसे बड़ा करने जाये तो कहे, नहीं... नहीं... नहीं... नहीं... भाईसाहब ! ऐसा नहीं, हाँ ! इतना बड़ा मैं नहीं, इतना बड़ा मैं नहीं। खर्च देना पड़े

इसलिए ? बहुत पैसावाला बताओ तो तुम पैसा लूटने के लिये बड़ा... बड़ा... बड़ा... कहते हो ? ऐसा कहते हैं। तुम तो बहुत पैसेवाले हो, तुम तो ऐसे हो – ऐसा कहकर हमारे पास से कुछ लेना है ? बड़ा बतलाकर हमारे क्या करना है ? यह बड़ा बतलाकर छोटापना लूटना है, सुन न ! पैसा नहीं लूटना वहाँ तेरे पास से।

मुमुक्षु – डरपोकपना यहाँ काम आवे ऐसा नहीं है।

उत्तर – डरपोक-बरफोक यहाँ है ही नहीं। बनिया डरपोक जैसा, यहाँ डरपोक कहाँ आत्मा में था ? ए... छगनभाई ! 'रण चढ़ा रजपूत छूपे नहीं, चन्द्र छुपे नहीं बादल छाया, चंचल नारी को नैन छुपे नहीं, भाग्य छुपे नहीं भभूत लगाया।' राजा साधु हो तो उसका ललाट छुपा रहता होगा ? यह तो बड़ा पुण्यवन्त प्राणी लगता है, वैभव छोड़कर (आया है)। वैभवशाली मनुष्य लगता है। समझ में आया ? वैसे ही आत्मा भगवान अपने रणक्षेत्र में चढ़ा, आहा...हा... ! मैं तो परमात्मा और मुझमें कोई अन्तर नहीं। आहा...हा... ! इस प्रकार अपनी दृष्टि में भगवान आत्मा को समभावी वीतरागरूप पूर्णानन्दरूप देखता हुआ, वीतराग में और आत्मा में कहीं अन्तर नहीं देखता। सिद्धान्त के सार को मायाचाररहित होकर प्राप्त कर जाता है। समझ में आया ? यह अन्तरस्वरूप भगवान जैसा है, वहाँ जाकर स्थिर हो न ! बाहर के आचरण से मैं कुछ बड़ा हूँ – ऐसा बतलाना चाहता है ? समझ में आया ? नग्नपना हुआ तो बड़ा हुआ, अट्ठाईस मूलगुण पालने से बड़ा हुआ – इनसे बड़ा है ? माया है मूर्ख ! समझ में आया ? जिससे अन्दर भगवान बड़ा होता है, उसकी महिमा से तुझे तू देख न ! उसकी शोभा से तू शोभित हो न ! पर की शोभा से शोभकर दूसरे को दिखाना है ? तुझे क्या करना है ? समझ में आया ? आहा...हा... !

धर्मधोरी धुरन्धरा महाविदेहक्षेत्र में विचरे.... क्या कहा पहले ? धर्म काल अहो वर्ते, धर्मक्षेत्र विदेह में.... देखो ! पहले काल लिया, क्षेत्र लिया, धर्मधुरन्धर (यह) द्रव्य लिया, धुरन्धर क्या कहा ? बीस-बीस जहाँ गरजे धोरी धर्मधुरंधरा.... आहा...हा... ! यह वस्तु ली। काल, उसका क्षेत्र, उसका द्रव्य, उसका भाव तो उसके पास, अन्दर है। ऐसे भगवान.... धोरी धर्म धुरन्धरा.... धोधमार ! उन्होंने कहा है, हाँ ! देखो **तीर्थंकरों द्वारा जो दिव्यध्वनि प्रगट होती है, वही सिद्धान्त का मूल स्त्रोत है।** सिद्धान्त का मूल स्त्रोत वहाँ

से आया है। पहली लाइन है, भाई! **उस जिनवाणी को गणधर आदि मुनि धारणा में लेकर बारह अंग की रचना करते हैं....** और बारह अंग का सार इसमें बताया है। दिव्यध्वनि में ही कहा है। आहा...हा...!

वीतराग हुए, सर्वज्ञ हुए, (वे) अल्पज्ञता में रखने के लिये बात करते होंगे? राग के कर्तृत्व में रखने के लिये बात करते होंगे? निमित्त का लक्ष्य रखना और मोक्ष लेना – इसके लिये भगवान की वाणी है? आहा...हा...! निमित्त का लक्ष्य रखना? निमित्त आवे तो काम होता है? यहाँ त्रिकाल पड़ा है, वहाँ एकाग्र हो तो काम होता है – ऐसे वहाँ जा! वीतराग की वाणी में यह आया है। कठिन परन्तु... पामरता को ऐसी पीस डाली है, पामरता को पीस डाला है। प्रभुता तो एक ओर पड़ी रही। उलझ गया।

कहते हैं आहा...हा...! **इउ जाणेविण जोयइहु छंडहु मायाचारु।** इस राग द्वारा, विकल्प द्वारा माहात्म्य मानना छोड़ दे। समझ में आया? इस वाणी के उपदेश द्वारा या बहुत वाणी मिली और समझाने का राग (आया), इसलिए उस वाणी द्वारा मेरी महिमा है (–यह बात) छोड़ दे। आहा...हा...! यह तो मायाचार है। एक ओर छोड़ न! महिमा तो यहाँ अन्दर प्रभुता विराजमान है, उसके शरण में जाने से तेरी शान्ति और वीतरागता प्रगट होगी। हमें बहुत आता है, हजारों लोग हमने ऐसे किये, हमने लाखों पुस्तकें बनायी – यह कोई तेरे आचरण हैं? यह तेरे आचरण हैं? तूने इससे शोभा, महिमा मनवाता है? क्या कहते हैं? मैंने बहुत शिष्य बनाये.... बनाये धूल में... कौन बनावे, कौन बनावे? और किसके बनाने से कौन बनता है? भगवान स्वयं परमात्मा समान है – ऐसा अन्तर जानकर स्थिर हो, (उसे) स्वयं को महिमा और लाभ मिलता है, बाकी धूल-धाणी है। समझ में आया?

छंडहु मायाचारु मुनि को मायाचार छोड़ने की जरूरत पड़ी? हाँ, इसका अर्थ यह। विकल्प के जाल द्वारा और शरीर की स्थिति द्वारा माहात्म्य मत मान, इससे महत्ता मत कर, यह मुझे बहुत कहना आता है, समझाना आता है, बड़ा आचार्य हुआ हूँ... समझ में आया? हमें पदवी मिली है। देखो! हमारे नीचे पाँच-पाँच सौ साधु बड़े करके बैठाये हैं, इनसे बड़प्पन मत मान, रहने दे। ए... हरिभाई! आहा...हा...! कठिन बात, भाई! कहो यह २१ गाथा (पूरी) हुई।

☆ ★ ☆

मैं ही परमात्मा हूँ

जे परमप्पा सो जि हउं जे हउं सो परमप्पु।
इउ जाणेविणु जाइआ अण्णु मरहु वियप्पु॥ २२॥

जो परमात्मा सो हि मैं, जो मैं सो परमात्म।
ऐसा जानके योगीजन! तज विकल्प बहिरात्म॥

अन्वयार्थ – (**जोइया**) हे योगी! (**जे परमप्पा सो जि हउं**) जो परमात्मा है वही मैं हूँ (**हे हउं सो परमप्पु**) तथा जो मैं हूँ सो ही परमात्मा है (**इउ जाणेविणु**) ऐसा जानकर (**अण्णु वियप्प म करहु**) और कुछ भी विकल्प मत कर।

☆ ★ ☆

२२। अब स्वयं ही आया, उस (२१ गाथा में) जिन सो हि परमात्मा (कहकर) ऐसी जरा तुलना की थी। अब मैं ही परमात्मा हूँ, ऐसा अनुभव कर, मैं ही परमात्मा हूँ, वीतराग सर्वज्ञदेव की ध्वनि में, त्रिलोकनाथ परमात्मा सौ इन्द्रों की उपस्थिति में समवसरण में लाखों-करोड़ों देवों की हाजिरी में ऐसा फरमाते थे कि तू परमात्मा है ऐसा निर्णय कर! तू परमात्मा है ऐसा निर्णय कर, ओ...हो...हो...! भगवान! परन्तु आप परमात्मा हो, इतना तो निर्णय करने दो! – कि यह परमात्मा हम हैं – ऐसा निर्णय कब होगा? – कि तू परमात्मा है – ऐसा अनुभव होगा, तत्पश्चात् यह परमात्मा है, ऐसा व्यवहार तुझे निर्णित होगा। निश्चय का निर्णय हुए बिना व्यवहार का निर्णय नहीं होगा। आहा...हा...! देखो, बदली बात!

जे परमप्पा सो जि हउं जे हउं सो परमप्पु।
इउ जाणेविणु जाइआ अण्णु मरहु वियप्पु॥ २२॥

आहा...हा...! देखो, यह! कहते हैं कि भाई! हे धर्मी जीव! **जो परमात्मा है वही मैं हूँ....** परमात्मा को विकल्प नहीं, परमात्मा बोलते नहीं, परमात्मा बोलने में आते नहीं ऐसा ही मैं आत्मा परमात्मा हूँ – ऐसा अनुभव दृष्टि में ले। आहा...हा...! यहाँ तो विशेष

कहते हैं कि **अण्णु म करहु वियप्पु** दूसरे जितने विकल्प करें – दूसरे को समझाने के, यह शास्त्र रचने के – इनसे तू बड़प्पन मानेगा तो यह वस्तु में नहीं है। समझ में आया? अब सब शास्त्र-वास्त्र चर्चा छोड़कर यह कर – ऐसा कहते हैं। कब तक तुझे शास्त्र की चर्चाएँ मथना है? इस शास्त्र में ऐसा कहा है और उस शास्त्र में यह कहा है और इस शास्त्र में यह कहा है, यह तो सब विकल्प की जाल है। आहा...हा...!

जो परमप्पा सो जि हउं मैं हूँ ऐसा। **सो जि हउं** यह परमात्मा, वही मैं हूँ। फिर उस परमात्मा जैसा जान – ऐसा नहीं। यहाँ तो कहते हैं परमात्मा ही मैं हूँ। पहले उनके साथ मिलान किया था। यहाँ तो परमात्मा पूर्णानन्दस्वरूप एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, पिण्ड भगवान, वही मैं हूँ – ऐसा अन्तर में निश्चय में अनुभव में ला और उसका अनुभव करना, वह तेरे लाभ में जाता है। बाकी जितने विकल्प करना और वाणी-फाणी यह सब, शास्त्र की चर्चाएँ और वाद-विवाद व शास्त्र चर्चा करना, यह सब लाभ में नहीं है – यहाँ तो ऐसा कहते हैं। हैं? समझ में आया?

उन्होंने कहा है – **व्यवहार की कल्पनाएँ छोड़कर केवल एक शुद्ध निश्चयनय से अपने आत्मा को पहचान.... शास्त्रों का ज्ञान संकेतमात्र है। शास्त्र के ज्ञान में ही जो अटका करेगा, उसे अपनी आत्मा का दर्शन नहीं होगा।** आहा...हा...!

मुमुक्षु – कल्पनाएँ कीं सब व्यवहार की।

उत्तर – कल्पना ही है न परन्तु व्यवहार की (तो कहे), नहीं, कल्पना नहीं। अब सुन न!

मुमुक्षु – उससे तो संवर-निर्जरा होती है साहब।

उत्तर – धूल होती है। भगवान चिदानन्द विराजता है और तू व्यवहार रंक से (लाभ मानता है)। परमेश्वर हुआ रंक, भिखारी परमेश्वर हुआ.... ए... परमेश्वर होता है या भिखारी परमेश्वर होता होगा? व्यवहार का राग भिखारी है, रंक है, नाश होने योग्य है, वह परमेश्वर पद को प्राप्त करावे? समझ में आया? शास्त्र की चर्चाएँ और कल्पनाएँ, यह कल्पना परमेश्वर पद को प्राप्त करावे? तैंतीस-तैंतीस सागर तक सर्वार्थसिद्धि के देव

शास्त्र की कल्पना (-चर्चा) करते हैं। छोड़, यह कल्पना छूटकर स्थिर होने से केवलज्ञान है। आहा...हा...! समझ में आया?

यह तो वीरों का मार्ग है, भाई! आहा...हा...! ..... यह आचार्य का टुकड़ा पहले खूब लेते, यह सब तुमने लिखा था (संवत्) १९८२ की साल में, पता है? बढ़वान... वीरवाणी... वीरवाणी... आती थी न? वीरवाणी? (संवत्) १९८२ के साल में चातुर्मास था। १९८२ में यह सब टुकड़े लिखते.... भगवान फरमाते हैं कि अरे... आत्मा! तेरा मार्ग तो अफरगामी का मार्ग, भाई! जिस रस्ते चढ़ा, वहाँ से नहीं फिरे – ऐसा तेरा मार्ग है। आचार्य का टुकड़ा है। ..... मैं.... परन्तु महापुरुषार्थ से आचरण में आवे ऐसा तेरा मार्ग है। यह कोई रेंगी-फेंगी नपुंसक, हिजड़ों का मार्ग नहीं है। जिस मार्ग में तू चढ़ा, वह अफरमार्ग है। निज अव्यक्तगामी-वापिस न फिरे ऐसा तेरा रास्ता है, केवलज्ञान लेकर ही रहेगा – ऐसा तेरा मार्ग है। एई... वीरवाणी में लिखते, फिर बाद में छपाते। (संवत्) १९८२-८३ में उस दिन ऐसा कहते, हाँ! उस दिन परन्तु... सभा हो, यह क्या कहते हैं परन्तु? आचारांग का टुकड़ा है। णमो लोए सव्वसाहूणं ऐसा टुकड़ा २५-५० ऐसे हैं। णमो लोए सव्वसाहूणं – भगवान कहते हैं, हे वीर! दुनिया के मार्ग के साथ मेरे वीतरागमार्ग को मत मिलाना, प्ररूपणा मत करना। दुनिया क्या मानती है? अमुक क्या मानते हैं? बड़े पण्डित क्या मानते हैं? अब छोड़ न, यह सब होली करते हैं। णमो लोए सव्वसाहूणं – हमारा वीतराग का मार्ग पूर्णानन्द के पन्थ में बहे हुए लोक के साथ इस मार्ग को नहीं मिलाते, लोक के साथ कहीं मेल खाये नहीं, बिल्कुल मेल नहीं खायेगा। लोग तो मूढ़ हैं। बहुत लोग हों तो क्या हो गया? समझ में आया?

भगवान आत्मा मैं पूर्णानन्द का नाथ शुद्ध चैतन्य महा परमात्मा के अन्तरस्वरूप से भरपूर, यह परमात्मा ही मैं हूँ। अरे! **जो हउं सो परमप्पु तथा जो मैं हूँ, वही परमात्मा है....** लो! **जो परमात्मा है, वही मैं हूँ तथा जो मैं हूँ, वही परमात्मा है....** अरस-परस ले लिया। मैं, वह परमात्मा और परमात्मा, वह मैं। यह इस स्वीकार किस पुरुषार्थ से आता है? मोहनभाई! आहा...हा...! भाईसाहब! हमें बीड़ी बिना नहीं चलता, तम्बाकू बिना नहीं चलता, एक जरा इज्जत थोड़ी ठीक न पड़े तो झटका खा जाये, उसे तुम परमात्मा कहते

हो ? अरे ! छोड़ न, यह कब तेरे स्वरूप में था ? भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, पूर्णानन्द का नाथ परमेश्वर को पर्याय में विकल्प की आड़ में भगवान पड़ा है। पूरा परमेश्वर, तूने छुपा दिया है। विकल्प की आड़ में छुपा दिया है। निर्विकल्प नाथ भगवान, निर्विकल्प अभेद स्वरूप है, वह निर्विकल्प दशा से ही प्राप्त हो – ऐसा है। समझ में आया ? आहा...हा... !

जो परमात्मा है वही मैं हूँ **इउ जाणेविणु ऐसा जानकर.... अण्णु वियप्प म करहु** – ऐसा करके (कहते हैं), दूसरा व्यवहार, शास्त्र के पठन का विकल्प, पंच महाव्रत के विकल्प, नवतत्त्व के भेद के विकल्प, महाव्रत के विकल्प, नव तत्त्व के भेद के विकल्प ये सब अब मत कर, मत कर; करने योग्य तो यह है।

मुमुक्षु – स्वयं महाव्रत करते हैं और महाव्रत के विकल्प छोड़ – ऐसा कहते हैं।

उत्तर – छोड़... छोड़... छोड़.... ऐसा कहते हैं। देखो, यह स्वयं कहते हैं।

मुमुक्षु – स्वयं कहते हैं ?

उत्तर – यह क्या कहते हैं ? छोड़। छोड़ने योग्य है, उसे छोड़; आदर करने योग्य है, वहाँ स्थिर हो, आहा...हा... ! अपनी अन्दर वस्तु ऐसी अनन्त आनन्द और अनन्त गुण से भरपूर पूरा तत्त्व, अकेला स्वयं परमात्मा का पिण्ड है। परमस्वरूप का पिण्ड भगवान आत्मा है, उसका आश्रय ले। यही मैं। विकल्प छोड़ दे। शास्त्र के पठन के विकल्प छोड़ दे, दूसरे को समझाऊँ तो मुझे लाभ होगा, यह तो उसकी मान्यता में होता ही नहीं परन्तु दूसरे को समझने का विकल्प भी मुझे लाभदायक नहीं है। आहा...हा... ! ए... रतनलालजी ! यह वीतरागमार्ग ! आहा...हा... ! लाखों लोग समझ जायें... आहा...हा... ! परन्तु तुझे क्या है ? तू कहाँ वहाँ विकल्प और वाणी में है ? जहाँ तू है, वहाँ विकल्प और वाणी नहीं है। वे तो परमात्मस्वरूप चिदानन्द अखण्ड ज्ञातादृष्टा है। वहाँ वह विकल्प नहीं, वाणी नहीं। अब तुझे वहाँ से लाभ लेना है ? समझ में आया ? विकल्प और वाणी है, वहाँ अजीवतत्त्व और बन्धतत्त्व है। बन्धतत्त्व में अबन्ध भगवान विराजता है ?

अबन्धस्वरूपी प्रभु मोक्षस्वरूपी आत्मा... वस्तु अर्थात् अबन्धस्वरूप। वस्तु अर्थात् मोक्षस्वरूप। वस्तु अर्थात् पूर्ण आनन्द की प्रगट... प्रगट शक्तिरूप पूरा तत्त्व – ऐसे परमात्मा, वह मैं और मैं, वह परमात्मा – ऐसा जानकर, हे आत्मा ! दूसरे विकल्प छोड़,

भाई! छोड़। आहा...हा...! वह कहे, नहीं। अभी शुभ विकल्प करोगे तो क्षायिक समकित होगा। अरे... कुकर्म कर डाला तूने। तूने परमात्मा को लुटा डाला... समझ में आया? बापू! यह निगोद का फल तुझे कठोर पड़ेगा भाई! यह दुनिया तो बेचारी अभी पकड़ेगी कि हाँ! अपने को तो कितना (मिलता है)! कैसा मार्ग कहता है? आहा...हा...! शुभ में तो धर्म होता है। धूल में भी थोड़ा (नहीं होता)। शुभ में भगवान पड़ा है? आत्मा शुभ से पार है, ऐसे आत्मा का अन्दर श्रद्धा-ज्ञान किये बिना, इसके द्वारा मुझे मिलेगा, मूढ़ पामर हो जायेगा, निगोद में जायेगा, हीन होते... होते... होते... मैं आत्मा हूँ या नहीं? – यह श्रद्धा उड़ जायेगी। आत्मा हूँ – ऐसा व्यवहार, अन्दर अंश में श्रद्धा है, वह उड़ जायेगी। आहा...हा...!

आड़ न दे, आड़ न दे, भगवान आत्मा को आड़ न दे। आड़ दिया तो तेरे ऊपर आड़ चढ़ जायेगी। आहा...हा...! यह एक शब्द आता था, नहीं? जो दूसरे को आड़ देता है, वह स्वयं को आड़ देता है – ऐसा शब्द है। उस दिन व्याख्या करते यह सब कथन तुम्हारी वीरवाणी में आये हैं, भाई! साथ थे? ऐसा। वहाँ थे तो सही परन्तु उस लिखने में साथ थे? किसी समय।

जो कोई अपनी आत्मसत्ता – ऐसी परमात्म सत्ता को आड़ देता है कि मैं इतना नहीं, मैं रागवाला और अल्पज्ञ और नीचवाला... वे आड़ देनेवाले, आत्मा में मैं नहीं ऐसा उसे एक बार आड़ देगा.... जगत में मैं आत्मा ही नहीं... मैं नहीं, मैं नहीं... कहाँ हूँ? कहाँ हूँ? समझ में आया? अन्धा हो जायेगा, मैं आत्मा ही, परमात्मा ही हूँ, अल्पज्ञ और राग नहीं, मैं परमात्मा ही हूँ; इसके अतिरिक्त विकल्प को छोड़ दे। इन सब विकल्पों से कुछ लाभ होगा, किंचित् लाभ होगा (–यह छोड़ दे)। हैं? तीर्थंकर कर्म बाँधे और तीर्थंकर कर्म बाँधे उसे अल्प काल में मुक्ति होती है, लो! श्रीमद् कहते हैं, एक जीव को भी यदि ठीक से समझावे तो तीर्थंकर कर्म बाँधता है... परन्तु बाँधता है न? ऐसा कहते हैं। छूटा कहाँ इसमें? अन्य विकल्प मत कर! यहाँ तो तीर्थंकर कर्म बाँधने का विकल्प भी छोड़ दे। समझ में आया? भगवान आत्मा परमात्मस्वरूप है न, प्रभु! अरे...! तेरे खजाने में कमी कहाँ है कि तुझे दूसरे की शरण लेना पड़े। आहा...हा...!

मुमुक्षु – पंचम काल में भी ऐसा है ?

उत्तर – पंचम काल में क्या.... काल में क्या आत्मा ही नहीं है, काल में आत्मा नहीं है, आत्मा में काल नहीं है। यह दो भाई 'वीरवाणी' लिखते थे। समझ में आया ? यह सिद्धान्त चलता है न एकदम ! आहा...हा... !

अण्णु म करहु वियप्पु भगवान ! आहा...हा... ! कौन कहते हैं ? सर्वज्ञ परमेश्वर कहते हैं। यहाँ मुनि कहते हैं। समझ में आया ? मुनिराज दिगम्बर सन्त योगीन्द्रदेव जंगलवासी, जिन्हें वस्त्र का एक धागा भी नहीं था.... जंगल में रहते थे। अकेले वस्त्र का धागा (नहीं था) – ऐसा नहीं। एक विकल्प की वृत्ति का तन्तु भी मुझमें नहीं – ऐसे वे थे। समझ में आया ? आहा...हा... ! यह कहते हैं, **इउ जाणेविणु जोइआ** इस स्वरूप में एकाग्र करनेवाला जीव ! इस एकाग्रता के अतिरिक्त विकल्प है, चाहे जैसा हो। पंच महाव्रत के हों, व्यवहार समिति, गुप्ति के हों, व्यवहार पर को समझाने के हों, शास्त्र पढ़ने के हों.... अब पढ़-पढ़कर तुझे कब तक पढ़ना है – ऐसा कहते हैं। ए... प्रवीणभाई ! पढ़कर क्या पढ़ते रहना है ? कि वह (भगवान) पढ़ना है अन्दर ?

यहाँ तो कहते हैं कि वह पढ़े हुए ज्ञान से पकड़ में आवे ऐसा नहीं, ऐसा वह है। ए.... निहालभाई ! अरे.... वह शास्त्र के जाने हुए ज्ञान से पकड़ में आवे ऐसा नहीं है। शास्त्र और शास्त्र की ओर का ज्ञान वह परावलम्बी ज्ञान है; छोड़ उसकी महिमा ! उसके बिना आत्मा का पता नहीं लगता – ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! यहाँ तो विकल्प की बात की, परन्तु वह विकल्प है। भेद है, पर तरफ का ज्ञान वह आत्मा के स्वभाव का ज्ञान नहीं है। समझ में आया ? आहा...हा... ! ऊँचे हो जाओ, नपुंसक हो तो नहीं होता, नपुंसक को उत्साह नहीं चढ़ता। समझ में आया ?

माता देवकी, श्रीकृष्ण वहाँ रहे थे न ? दूसरी जगह रहे थे ? ग्वाले के यहाँ। जहाँ माता को देखकर प्रेम आया और माता के स्तन में से दूध आया, सहज ही दूध आया, ऐसा जन्म दिया है न इन्होंने ! यह क्या ? कहते हैं, ग्वाले के यहाँ जन्म दिया और यह मेरी माता लगती है, इसे यह दूध क्या आया ? यह मेरी माता लगती है। ग्वाले के वहाँ तो मुझे रखा लगता है। वासुदेव थे न ? महा विचक्षण बुद्धिवाले थे। देवकी को दूध क्यों आया ? यह

मेरी माता लगती है, मैं भी ऐसा देखूँ तो बल और शरीर की सब स्थिति ऐसी लगती है। जहाँ मैं ग्वालों में रहा था, उस जाति का मैं नहीं लगता, आहा...हा...! समझ में आया? आहा...हा...! ऐसी नजर करे, वहाँ रानी को कहे, रानी की दिखावट भी अलग प्रकार की, पुण्यशाली है न! देवकी तो पुण्यशाली है! आहा...! शक्ल-सूरत के गर्भ का मैं लगता हूँ। वह नहीं, वह नहीं, इसलिए इनके स्तन में दूध आया है। समझ में आया? आहा...हा...! इसी प्रकार आत्मा इस विकल्प की जाति का नहीं है। निर्विकल्प चैतन्य भगवान आत्मा निर्विकल्प दृष्टि से पकड़ में आये ऐसा है – ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

अण्णु म करहु वियप्पु पंच महाव्रत के विकल्प भी छोड़ दे। भगवान तो ऐसा कहते हैं कि हमें सुनना छोड़ दे। यह प्रभु क्या कहते हैं परन्तु यह? ए...ई...! भगवान फरमाते हैं कि हमारे सन्मुख देखना छोड़ दे। हमारे सामने देखने से तेरा भगवान हाथ नहीं आयेगा। आहा...हा...! दिव्यध्वनि कहती है – भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा की वाणी में ऐसा आया, त्रिलोकनाथ समवसरण में फरमाते थे, अरे... आत्मा! तू परमात्मा है, अन्तर की चीज में परमात्मा न हो तो पर्याय के काल में परमात्मा कहाँ से आयेगा? क्या बाहर से आवे ऐसा है? भगवान परमात्मा का स्वरूप ही तेरा है। गर्भ में रहा है बन्दर और जन्में बालक – ऐसा होता होगा? गर्भ में मनुष्य का बालक वह भी ऐसा हो, उसका इनलार्ज होकर बाहर आता है। समझ में आया? इसी प्रकार भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण परमात्मा का रूप ही आत्मा का है। आहा...हा...! यह अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त स्वच्छता, प्रभुता, वीतरागता, निर्ग्रन्थता – ऐसे समस्त गुणों से भरपूर भगवान परिपूर्ण प्रभु आत्मा तू है। तू तुझे देख और आत्मा जान व मान! भगवान कहते हैं कि मेरे सन्मुख देखना रहने दे... ताकना रहने दे कि मुझसे कुछ मिलेगा – ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया यह? इस वीतराग की वाणी में यह होता है, पामर की वाणी में यह नहीं होता। भगवान कुछ लेना नहीं तुम्हारे? कुछ फल तो लो... यह उपदेश दे दिया, शास्त्र का फल न हो तो उसकी पर्याय में, मुझे क्या? मैं तो केवलज्ञानी हूँ। मुझे कुछ लेना नहीं या अधूरा पूरा करना नहीं, उसके कारण...

साधकजीव को अधूरा पूरा करना हो तो कुछ विकल्प और पर को समझाने से नहीं होता। अधूरा पूरा (करना हो तो) पूर्ण परमात्मा को देखने में एकाकार होवे तो अधूरा पूरा हो जायेगा। समझ में आया? आहा...हा...!

यहाँ तो कहते हैं **शब्दों से समझ में नहीं आता।** ए...इ...! **मन और विचार में नहीं आता।** भगवान मन के विचारने में आता है वह? परमात्मा अखण्ड आनन्द का रसकन्द है। स्वयं अनाकुल शान्तरस का पिण्ड है, पिण्ड, पूरा पिण्ड पड़ा है, खोल दृष्टि में से, कहते हैं। आहा...हा...! ऐसा भगवान मन में, विचार में नहीं आता। शब्द तो क्रम-क्रम से बतलाते हैं, उसमें आत्मा कहाँ आया? कहते हैं। समस्त शास्त्रों की चर्चाओं को छोड़। गुणस्थान, मार्गणास्थान के विचार को बन्द कर। लो! ऐसा इन्होंने बहुत अधिक लम्बा लिखा है। समझ में आया? फल का दृष्टान्त आया है। ठीक है, कहो! यह दो गाथा हुई।

☆ ★ ☆

आत्मा असंख्यातप्रदेशी लोकप्रमाण है

सुद्धपएसह पूरियउ लोयायासपमाणु।
सो अप्पा अणुदिणु मुणहु पावहु लहु णिव्वाणु॥ २३॥

शुद्ध प्रदेशी पूर्ण है, लोकाकाश प्रमाण।
सो आतम जानो सदा, लहो शीघ्र निर्वाण॥

अन्वयार्थ – (लोयायासपमाणु सुद्धपएसह पूरियउ) जो लोकाकाशप्रमाण असंख्यात शुद्ध प्रदेशों से पूर्ण है **(सो अप्पा)** यही यह अपना आत्मा है **(अणुदिणु मुणहु)** रात-दिन ऐसा ही मनन करो **(णिव्वाणु लहु पावहु)** व निर्माण शीघ्र ही प्राप्त करो।

☆ ★ ☆

अब आयी तीसरी। अब भगवान का स्थल बतलाते हैं। किस स्थल में भगवान विराजमान हैं? यह भगवान आत्मा किस स्थल में (रहता है)? उसका क्षेत्र कहाँ? उसका

घर कहाँ है ? इस भगवान का ? आहा...हा... ! **आत्मा असंख्यातप्रदेशी लोकप्रमाण है।** भगवान आत्मा.... ! यह (शरीर) तो मिट्टी का-धूल का रजकण है। वह कहीं आत्मा नहीं है। अन्दर राग-द्वेष के परिणाम होते हैं, वे कोई आत्मा नहीं है। कर्म के रजकण धूल-मिट्टी पड़ी है, वह कर्म जड़ है। वह आत्मा नहीं है। आत्मा अन्दर असंख्य प्रदेशी है.... एक प्रदेश उसे कहते हैं कि जिसका एक परमाणु / पॉइन्ट गज समान का माप करने से जिसकी चौड़ाई दिखे, उसे प्रदेश कहते हैं। ऐसा भगवान आत्मा असंख्य प्रदेशी स्थल में पड़ा है। ऐसे असंख्य प्रदेश में अनन्त गुण का धाम पड़ा है। क्षेत्र किसलिए बतलाते हैं ? कोई ऐसा कहता है कि आत्मा लोकव्यापक है (परन्तु) ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

भगवान आत्मा.... ऐसा एकाग्र होना चाहता है, तब एकाग्र होता है या ऐसे एकाग्र होता है ? हैं ? बस ! उसका क्षेत्र असंख्य प्रदेशी, इस देह प्रमाण, देह से भिन्न; देह प्रमाण, देह से भिन्न। देह प्रमाण भले हो, इससे कहीं देह का प्रमाण यहाँ आत्मा में आ गया ? वह तो असंख्य प्रदेशी भगवान लोक प्रमाण है। लोक के जितने प्रदेश हैं, उतनी संख्या से प्रदेश में आत्मा विराजमान है। राग में कहीं वह विराजता नहीं है।

सुद्धपएसह पूरियउ लोयायासपमाणु।
सो अप्पा अणुदिणु मुणहु पावहु लहु णिव्वाणु॥ २३॥

लहु... लहु... लहु... बहुत बार आता है। मोक्ष कर, मोक्ष कर। मोक्ष तो तेरा घर है आहा...हा... ! संसार में कहाँ मर गया भटक-भटककर ? चौरासी के अवतार में कचूमर निकल गया तो भी छोड़ने का तुझे हर्ष नहीं आता ? आहा...हा... ! घर तो आ, घर तो आ। इस पर घर में भटककर मर गया, कहते हैं। कहाँ घर रहा तेरा ?

लोकाकाश प्रमाण असंख्यात शुद्ध प्रदेशी.... देखो ! अन्तर वस्तु असंख्य प्रदेश का दल है। प्रभु अरूपी भी दल है। रूप, वर्ण, गंध, रस, स्पर्शरहित असंख्य प्रदेशी चौड़ाई दलवाली चीज है। दल – पुष्टवाली चीज है। इस असंख्य प्रदेश में असंख्य प्रदेश शुद्ध रत्न समान निर्मल है। असंख्य प्रदेश शुद्ध रत्न समान निर्मल है। इनमें अनन्त-अनन्त गुण निर्मलरूप से उस क्षेत्र में विराजमान है। आहा....हा.... ! समझ में आया ? क्या

कहलाये.... ? एक पर्दे में महिला होती है न ? भले ही ठिकाने बिना की (होवे परन्तु उसे) देखने का मन करता है। कहाँ रहती है ? ए... उसमें रहती है, उस बंगले में... जरा सा सिर से पर्दा हटकर बाहर निकले तो कहे देखो यह निकले ! हैं ? ऊपर.... पर्दा जरा हट गया तो यह रानी साहब निकले.... ए... रानी साहब निकले। क्या है ? हो तो भी सब समझने जैसा है। हैं ? रानी साहब निकले, रानी साहब निकले... भावनगर दरबार की रानी पहली बार निकली, तब लोगों को लगा क्या निकले ? पहली बार पर्दा छोड़ा है न ? जब प्रथम पर्दा छोड़ा तब मोटर में निकले थे, वह गाँव उछल गया था। रानी साहब ने आज पर्दा छोड़ा, रानी साहब ने पर्दा छोड़ा.... उनकी चमड़ी को देखने निकला.... भगवान को देखने तो निकल एक बार ! पर्दा छोड़ दे। राग की विकल्प की एकता का पर्दा छोड़ दे। भगवान पूर्णानन्द प्रभु अन्दर में विराजमान है। आहा...हा... ! अरे... परन्तु उसे बात सुनना... क्या यह होगा ? मैं ऐसा होऊँगा ? इसे अतिरेक जैसा लगता है, अतिरेक जैसा लगता है। जो वस्तु की स्थिति है.... उसे क्या अतिरेक कहलाता है ? अतिश्योक्ति (लगती है)। आहा...हा... !

कहते हैं यह तेरे असंख्य प्रदेश सत्ता प्रभु भगवान है। समझ में आया ? जो वस्तु होती है, उसे कोई भी आकार होता है। आत्मा वस्तु है या नहीं ? तो आकार होगा या नहीं ? वस्तु है या नहीं ? सत्ता है या नहीं ? सत्ता को आकार होता है या नहीं ? सत्ता को क्षेत्र होता है या नहीं ? ऐसा सिद्ध करते हैं। ए... प्रवीणभाई !

यह वस्तु है, देखो ! यह वस्तु है या नहीं ? तो इसकी सत्ता है या नहीं ? है न ? तो इसका क्षेत्र है न ? कितना ? कि इतना। जिसका अस्तित्व है, उसे क्षेत्र होता है या नहीं ? जिसका अस्तित्व है, उसे क्षेत्र होता है या नहीं ? वैसे ही आत्मा का अस्तित्व है तो उसका क्षेत्र है या नहीं ? असंख्य प्रदेश उसका स्थल-क्षेत्र है। एक-एक प्रदेश पूर्णानन्द, पूर्ण निर्मलानन्द से भरपूर है। जिसमें अनन्त आनन्द पके – ऐसा उसका असंख्य क्षेत्र है। इस असंख्य क्षेत्र का तेरा क्षेत्र ऐसा है कि इसमें अनन्त केवलज्ञान, अनन्त आनन्द पके वह क्षेत्र है। घास-फूंस पके ऐसा यह क्षेत्र नहीं है। आहा...हा... ! अनाज होता है, घास-फूंस सामान्य जमीन में होता है और ऊँचे चावल होते हैं न, ऊँची जमीन में होते हैं ! तो यह तो

आत्मा ऊँची चीज... सिद्ध की पर्याय पके ऐसा आत्मा है। समझ में आया? संसार पके वह आत्मा नहीं। आहा....हा...! राग-द्वेष पके वह आत्मक्षेत्र नहीं। आहा...हा...!

यह शब्द लिया है न? **सुद्ध** शुद्ध प्रदेश है भगवान आत्मा के असंख्य प्रदेश शुद्ध हैं। जिसमें अनन्त गुण विराजमान हैं। **लोयाया** लोक के – आकाश के प्रदेश प्रमाण उसका क्षेत्र है। **सो अप्पा अणुदिण मुणहु रात-दिन उसका ही मनन करो... अप्पा अणुदिणु** दिन-दिन, रात्रि। रात और दिन – ऐसा **मुणहु पावहु लहु** ऐसा असंख्य प्रदेशी भगवान अन्दर में विराजमान है, वहाँ नजर कर, वहाँ नजर कर, उस क्षेत्र में नजर कर! **अणुदिण** उसका ध्यान कर, तो अल्प काल में केवलज्ञानरूपी निर्वाण पद प्राप्त होगा। इसके बिना दूसरे किसी प्रकार हो ऐसा नहीं है।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

अतीन्द्रिय दशा अर्थात् इन्द्रियों को ढाँकना नहीं

अहा! मुनि को देहमात्र परिग्रह होता है अर्थात् एक शरीर ही होता है; परन्तु उस पर वस्त्र का एक धागा भी नहीं होता। उनको वस्त्र का धागा भी नहीं होने का कारण यह है कि पाँच इन्द्रियों की चञ्चलतारूप अस्थिरता भी मिट गई है, इसलिए सम्पूर्ण आत्मा में अतीन्द्रियपना प्रगट हो गया है, उनका नाम मुनि है। जिसे आत्मा का भान न हो और अकेला नग्न होकर घूमता हो, वह मुनि नहीं है।

मुझे अन्दर से यह बात आई थी कि यह नग्नपना अर्थात् क्या? मुनि को वस्त्र का एक भी टुकड़ा क्यों नहीं? अहा! मुनि को अतीन्द्रियदशा हो गई है, इसलिए उनको किसी भी इन्द्रिय के किसी भी भाग को ढाँकना हो ही नहीं सकता। उनकी समस्त इन्द्रियाँ खुल्ली हो गई हैं और ऐसे जैन के साधु होते हैं - ऐसा यहाँ कहते हैं।

— पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी